महर्षि दयानन्द सरस्वती का वडोदरा (बड़ौदा) प्रवास

डॉ. भवानीलाल भारतीय

आर्य परिवार, आर्यनीड़म्, वडोदरा

चांणोद (चान्दोद) के निकट नर्मदा का घाट

बड़ौदा के तत्कालीन दीवान सर टी. माधवराव

ओ३म्

महर्षि दयानन्द सरस्वती का वडोदरा (बड़ौदा) प्रवास

डॉ. भवानीलाल भारतीय

आर्य परिवार, आर्यनीड़म्, वडोदरा

प्रकाशक :
आर्य परिवार, आर्यनीड़म्
सुजाता पार्क, वडोदरा-390 015
✆ : 330293

• पुस्तक प्राप्ति स्थान :
आर्य परिवार, आर्यनीड़म्
16, सुजाता पार्क, उत्कर्ष विद्यालय के पीछे,
गदापुरा, वडोदरा-390 015
✆ : 330293

डॉ. भवानीलाल भारतीय
8/423, नन्दनवन, जोधपुर-342 008
✆ 755883

• प्रकाशन वर्ष : 2000 ई. 2057 वि.
• मूल्य : 10 रुपये

• कम्प्यूटरीकरण :
जांगिड़ कम्प्यूटर्स,
14/934, चौ.हा. बोर्ड, जोधपुर
✆ 440581

• मुद्रक :
विनय प्रिंटिंग एण्ड बाइंडिंग वर्क्स
जालोरी गेट के अन्दर, जोधपुर
✆ 640481

अनुक्रमणिका

प्राक्कथन

मैंने भारत की आर्यसमाजों से दो निवेदन किये हैं-(१) जिन नगरों, कस्बों और ग्रामों को युगप्रवर्त्तक महर्षि दयानन्द ने अपनी पद रज से पवित्र किया है तथा जहाँ के लोगों को अपना वचनामृत पान कराया है, उन स्थानों की आर्यसमाजें एक ऐसी पुस्तक प्रकाशित करायें जिसमें श्री महाराज के उस स्थान में आगमन, निवास, प्रवचन आदि का पूरा विवरण रहे। ऐसी पुस्तक की पाण्डुलिपि को तैयार करने का दायित्व मैंने स्वयं लिया है। अब तक महर्षि के जोधपुर, उदयपुर तथा वाराणसी (काशी) निवास का विवरण प्रस्तुत करने वाली मेरी पुस्तकें छप चुकी हैं। इसी क्रम में स्वामी दयानन्द के वडोदरा प्रवास विषयक इस परिचयात्मक पुस्तिका का प्रकाशन किया जा रहा है। इन परिचय पुस्तिकाओं के दो लाभ हैं - आपके आर्यसमाज में यदि कोई अतिथि अथवा नवागन्तुक आता है तो आप उसे यह पुस्तक उपहारस्वरूप दे सकते हैं। यदि आपके नगर में पर्यटकों का आगमन होता है तो

उन्हें भी यह पुस्तक दी जा सकती है जिससे वे यह जान सकेंगे कि इस नगर को भारतीय नवजागरण के पुरोधा दयानन्द सरस्वती ने अपने आगमन से कब पवित्र किया था तथा यहाँ उनकी क्या-क्या प्रवृत्तियां रहीं।

(२) मेरा दूसरा निवेदन यह है कि जिन नगरों, कस्बों तथा ग्रामों में महर्षि का पदार्पण हुआ तथा वहाँ वे जिस स्थान (मकान, मंदिर अथवा अन्य स्थान) पर रहे उसके समीप एक शिलालेख स्थापित किया जाये जिस पर महाराज के वहाँ आगमन, प्रत्यागमन तथा उनकी तत्र्स्थानस्थ प्रमुख प्रवृत्तियों का संक्षिप्त विवरण रहे। उत्तराखण्ड के प्रमुख स्थानों पर ऐसे शिलालेख स्थापित कराने का दायित्व श्री इन्द्र वर्मा चौहान (रामनगर,जिला-नैनीताल) ने लिया है। मुम्बई में इस कार्य को श्री कैप्टन देवरत्न आर्य कर रहे हैं। इस प्रकार के शिलालेख पर क्या इबारत लिखाई जाये, इस सम्बन्ध में मैं अपनी सेवाएं देने के लिए तैयार हूँ।

गत वर्ष मार्च १९९९ में जब मुझे आर्यसमाज के प्रचार कार्यक्रम में भाग लेने के लिए वडोदरा (गुजरात) जाने का अवसर मिला तो मैंने आर्य प्रतिनिधि सभा गुजरात के विगत महामंत्री श्री रतनसी भाई वेलाणी तथा अन्य आर्य पुरुषों से ऐसी परिचय पुस्तक छापने के बारे में विचार-विमर्श किया। श्री वेलाणी ने सहर्ष अपनी सहमति दी तथा इसे प्रकाशित कराने का भी संकल्प व्यक्त किया। वडोदरा के इसी प्रवास में हम ऋषि के संन्यास ग्रहण स्थल चाणोद-करणाली (नर्मदा तट का एक तीर्थ) को देखने गये जहाँ

उन्होंने पर्याप्त समय तक निवास किया था। इस समय तक स्वामी दयानन्द नितान्त अज्ञात, अख्यात, एकाकी, नैष्ठिक ब्रह्मचारी के रूप में ही नर्मदा के इस तटवर्ती प्रान्त का भ्रमण कर रहे थे। तथापि इस स्थल का महत्त्व निर्विवाद है, जहाँ उन्होंने ब्रह्मचर्य आश्रम से सीधे संन्यास की दीक्षा ली। वडोदरा प्रवास के विवरण के साथ-साथ इस पुस्तक में महाराज के चाणोद-करणाली आदि निकटवर्ती स्थानों में निवास का ब्यौरा भी दे दिया गया है। पुस्तक के सुन्दर तथा भव्य प्रकाशन के लिए वडोदरा के श्री रतनसी भाई वेलाणी तथा सुचारु मुद्रण के लिए जांगिड़ कम्प्यूटर्स के श्री भंवरलाल सुथार साधुवाद के पात्र हैं।

प्रथम ज्येष्ठ पूर्णिमा २०५६ वि. **-डा. भवानीलाल भारतीय**

नन्दनवन, जोधपुर

ऋषि दयानन्द का वडोदरा (बड़ौदा) प्रवास

जिसे हम आज भारत गणतंत्र का गुजरात राज्य कहते हैं, ब्रिटिश शासन में वह बम्बई प्रदेश (Bombay Presidency) का एक हिस्सा था। आज का सम्पूर्ण महाराष्ट्र, गुजरात तथा सिंध उस समय बम्बई प्रान्त के भाग थे। गुजरात में अनेक देशी राज्य थे। इनमें अनेक तो इतने छोटे थे कि उन्हें स्वतंत्र राज्य कहना भी अजीब-सा लगता था, तथापि ये सब रजवाड़े स्वतंत्र (वस्तुतः अंग्रेजों की दासता स्वीकार किए हुए) हिन्दू राजाओं तथा मुसलमान नवाबों के अधीन थे। वडोदरा गुजरात का एक बड़ा तथा समृद्ध राज्य था जिसकी राजधानी वडोदरा विश्वामित्री नदी के तट पर बसा इसी नाम का नगर है। गायकवाड़ वंश के मराठा शासक यहाँ के राजा थे जिन्हें अपने राज्य का भीतरी प्रशासन करने के समस्त अधिकार प्राप्त थे। तथापि इन राज्यों का सर्वोपरि नियंत्रण अंग्रेज पोलिटिकल एजेण्ट करता था, जो रेजीडेण्ट कहलाता था। छोटे-छोटे राज्यों पर एक ही एजेण्ट का नियन्त्रण रहता था जबकि बड़ी रियासतों के देशी शासकों के काम की देख-रेख तथा भारत की

सर्वोच्च सत्ता से उनका तालमेल रखने के लिए प्रत्येक बड़ी रियासत में पृथक् एजेण्ट रहते थे।

स्वामी दयानन्द सरस्वती का जन्म गुजरात प्रदेश के अन्तर्गत सौराष्ट्र (काठियावाड़) की एक छोटी-सी रियासत मौरवी के एक बड़े ग्राम टंकारा में १८२४ ई. में हुआ था। मौरवी एक छोटी रियासत थी जिसकी आर्थिक स्थिति कुछ अच्छी नहीं थी। देशी रियासतों के राजा कभी-कभी अपने राज्य कोष में धन की कमी को देखते हुए सम्पन्न सेठ, साहूकारों से लाखों रुपया उधार ले लेते थे। ऐसा ही एक प्रसंग मौरवी के इतिहास में घटित हुआ। सन् १८३४ में मौरवी के ठाकुर जियाजी वाघजी ने अपनी रियासत का टंकारा ग्राम सुन्दरजी शिवजी नामक एक साहूकार के पास ६ लाख कोरी (एक स्थानीय मुद्रा) अथवा सवा तीन लाख रुपयों में बंधक रख दिया था। केवल टंकारा ही नहीं, टंकारा तालुका (तहसील) तथा छह ग्राम सेठ सुन्दरजी शिवजी के पास गिरवी रखे गये थे। इसके पश्चात् हम देखते हैं कि बड़ौदा के एक करोड़पति सेठ गोपाल मेडेले नारायण भाऊ ने सेठ सुन्दरजी शिवजी को उक्त राशि चुका दी और टंकारा पर अपना अधिकार कर लिया। इस सेठ की ओर से टंकारा की शासन व्यवस्था मोरोबा पन्त उपनाम भाऊ साहब देखते थे। दयानन्द सरस्वती के पिता इसी शासन के अन्तर्गत टंकारा के जमेदार तथा वहीवटदार थे। वे स्वयं तो लेनदेन तथा कृषि का कार्य करते ही थे, शासन की ओर से उन्हें मालगुजारी वसूल करने तथा कुछ फौजदारी अधिकार भी प्राप्त थे।

दयानन्द सरस्वती का प्रथम बार बड़ौदा राज्य में प्रवेश

वि.सं. १९०३ (१८४६ ई.) की किसी संध्या को टंकारा ग्राम के एक औदीच्य ब्राह्मण परिवार का एक युवक जीवन-मृत्यु के रहस्य को जानने के संकल्प तथा तीव्र वैराग्य भाव को लेकर अपने घर को त्याग देता है। वह सायला, सिद्धपुर होता हुआ अहमदाबाद आता है और वहाँ से सच्चे योगियों, तपस्वियों और सिद्धपुरुषों की तलाश में वडोदरा के चेतन मठ में पहुँचता है। इसने अपने घर के नाम मूलशंकर को त्याग कर नैष्ठिक ब्रह्मचर्य व्रतधारी होने के कारण 'शुद्ध चैतन्य' नाम ग्रहण किया है। शुद्ध चैतन्य का प्रथम बड़ौदा आगमन १९०४ वि. (१८४७ ई.) में हुआ। चेतन मठ में उसकी भेट स्वामी ब्रह्मानन्द तथा अन्य विरक्तों से हुई। इन्होंने परस्पर शांकर वेदान्त की आलोचना (चर्चा) की। इसका नतीज़ा यह निकला कि शुद्ध चैतन्य का अद्वैत वेदान्त में दृढ़ विश्वास हो गया और वह स्वयं को परब्रह्म मानने लगा। वह समीपवर्ती किसी स्थल में रहने वाले सच्चिदानन्द परमहंस से भी मिला तथा

तत्त्व-ज्ञान के विभिन्न पहलुओं पर चर्चा की। इन्हीं स्वामी सच्चिदानन्द ने ब्रह्मचारी शुद्ध चैतन्य को बताया कि इसी बड़ौदा राज्य में नर्मदा के तट पर चान्दोद (चाणोद उच्चारण भी प्रचलित है) नामक एक तीर्थ स्थान है जहाँ विद्वान् तथा चिन्तनशील साधुओं का निवास है।

तद्नुसार शुद्ध चैतन्य चान्दोद आता है। आज इस घटना को १५३ वर्ष व्यतीत हो चुके हैं। आज चांदोद तथा समीपवर्ती करणाली ग्राम में कोई ऐसा व्यक्ति नहीं है जो शुद्ध चैतन्य के चान्दोद प्रवास के बारे में जानकारी दे सके। वर्षों पूर्व ऋषि दयानन्द के जीवनचरित के लेखक तथा अन्वेषक देवेन्द्रनाथ मुखोपाध्याय जब चान्दोद गये थे तब भी वे किसी व्यक्ति से ऋषि दयानन्द के इस तीर्थग्राम में निवास का कोई विवरण प्राप्त नहीं कर सके थे। कारण स्पष्ट है, उस समय तक शुद्ध चैतन्य सर्वथा अज्ञात, अप्रख्यात, विरक्त ब्रह्मचारी था। वह विश्व-विश्रुत दयानन्द तो बहुत बाद में बना था।

चाणोद में शुद्ध चैतन्य दीक्षित और चिदानन्द स्वामी आदि तत्त्वज्ञानियों से मिला। यहाँ पर ही उसने सदानन्द के वेदान्त सार, वेदान्त परिभाषा तथा आर्य हरिमिहिर तोटक आदि ग्रन्थों का अध्ययन किया। अब शुद्ध चैतन्य के मन में संन्यास लेने की इच्छा हुई। उसके मन का तीव्र वैराग्य तथा परम तत्त्व की जिज्ञासा तो उसे चतुर्थ आश्रम में प्रविष्ट होने की प्रेरणा दे ही रहे थे, कुछ अन्य व्यावहारिक कारण भी बन गये, जिससे उसने तुरीयाश्रमी

(संन्यासी) होने का निश्चय किया। प्रथम तो नैष्ठिक ब्रह्मचारी को अपना भोजन खुद बनाना पड़ता है, यह ब्रह्मचर्य की मर्यादा है। सम्पन्न कुल में उत्पन्न मूलशंकर के लिए स्वयंपाकी होना किसी सजा से कम नहीं था। फिर उसे इस बात का भी भय था कि अभी तक वह अपने ग्राम से अधिक दूर नहीं है। सम्भव है उसे लोग पहचान लें, जो उसके लिए विपत्ति का कारण बन सकता है। यदि वह शिरोमुण्डित, शिखासूत्रविहीन संन्यासी हो जाता है, तो उसे पहचानना लोगों के लिए कठिन हो जायगा।

शुद्ध चैतन्य ने चाणोद में ही संन्यास लिया था, यह एक सुनिश्चित तथ्य है। वहाँ रहते हुए उसे अभी थोड़ा ही समय हुआ था कि दक्षिण भारत से दो विरक्त पुरुष आये और चाणोद के समीप के जंगल में बने एक टूटे मकान में रहने लगे। यह स्थान चाणोद की बस्ती से लगभग दो मील दूर होगा। आगन्तुक दो पुरुषों में जो संन्यासी थे वे महाराष्ट्र देशोत्पन्न पूर्णानन्द सरस्वती थे। उनके साथ का युवक ब्रह्मचारी था। संन्यास ग्रहण के लिए उत्सुक शुद्ध चैतन्य ने एक दक्षिणी पण्डित के माध्यम से स्वामी पूर्णानन्द को कहलवाया कि वे इस गुजराती युवक (शुद्ध चैतन्य) को संन्यास की दीक्षा दें। इस अनुरोध को स्वामी पूर्णानन्द ने यह कह कर अस्वीकार कर दिया कि प्रथम तो इस युवक की आयु थोड़ी है और दूसरी आपत्ति यह बतलाई कि वे स्वयं तो महाराष्ट्रवासी हैं जबकि यह युवक गुर्जर (गुजराती) है। भला, महाराष्ट्र का संन्यासी अन्य प्रान्तस्थ को चौथे आश्रम की दीक्षा

कैसे दे सकता है? इस पर शुद्ध चैतन्य के परिचित पण्डित ने यह कह कर समाधान किया कि युवक के प्रखर वैराग्य तथा तत्त्व जिज्ञासा में उसकी रुचि को देखते हुए उसे संन्यास देना अनुचित नहीं है। उन्होंने यह भी कहा कि महाराष्ट्र तथा गुर्जर दोनों की गणना पंचद्राविड़ों में होती है, अतः इसे उत्तरदेशीय न समझा जाये। अन्ततः स्वामी पूर्णानन्द राजी हो गए और उन्होंने शास्त्रोक्त विधि से ब्रह्मचारी शुद्ध चैतन्य को संन्यास की दीक्षा थी तथा उसे दयानन्द सरस्वती का नाम दिया। स्वामी पूर्णानन्द तो तत्काल द्वारिका चले गये। उनका अपने इस शिष्य से जीवन में पुनः कभी साक्षात्कार नहीं हुआ। दयानन्द सरस्वती को दीक्षा देने वाले उनके इस गुरु के बारे में भी इनके नाम से अधिक कोई जानकारी हमें नहीं है। वे महाराष्ट्रवासी तो थे ही।

संन्यास ग्रहण करने के पश्चात् दयानन्द पर्याप्त समय तक वडोदरा अंचल में भ्रमण करते रहे। थोड़े दिन चाणोद में रहने के पश्चात् वे व्यासाश्रम चले गए जहाँ उन्होंने स्वामी योगानन्द से योग के रहस्यों को सीखा। १९०५ वि. में वे समीपवर्ती सिनोर नामक ग्राम में आये और यहाँ कृष्ण शास्त्री नाम के एक विद्वान् से संस्कृत व्याकरण पढ़ते रहे। यहाँ से १९०६ वि. में वे पुनः चाणोद आये। चाणोद में उन्हें दो उच्चकोटि के योगी स्वामी शिवानन्द गिरि एवं स्वामी ज्वालानन्द पुरी मिले। दयानन्द ने जब इन योगियों से योग के सुगूढ़ रहस्यों को जानने की इच्छा व्यक्त की तो योगीद्वय ने उनसे कहा कि अभी तो वे अहमदाबाद जा रहे हैं जहाँ

वे दुग्धेश्वर महादेव के मंदिर में ठहरेंगे। वे (दयानन्द) थोड़े समय बाद अहमदाबाद आकर उनसे मिलें। तब वे उन्हें योग के व्यावहारिक और सैद्धान्तिक पक्ष का ज्ञान करायेंगे। दयानन्द ने इनके इस आदेश को स्वीकार किया और वे १६०७ वि.सं. में अहमदाबाद आ गये। वडोदरा अंचल की दयानन्द सरस्वती की यह प्रथम यात्रा थी। इस समय वे सच्चे योगियों और तत्त्वज्ञानी संन्यासियों की तलाश में जिज्ञासु बने घूम रहे थे। न तो उन्हें ही कोई जानता ही था और न वे खुद अपना परिचय दूसरों को देने के लिए उत्सुक थे।

बहुत समय बीता और अब महाराजा विक्रमादित्य का संवत् १६३२ (१८७५ ई.) आया है। नर्मदा तट के प्रदेशों में विचरण करने वाला दयानन्द सरस्वती अब देश का एक लोकमान्य प्रसिद्ध धर्माचार्य, समाज सुधारक तथा सर्वांगीण क्रान्ति के विधायक महापुरुष के रूप में ख्याति प्राप्त कर चुका है। इसी वर्ष उसने अप्रैल की दस तारीख (चैत्र शुक्ला पंचमी) को बम्बई महानगर में संसार के सर्वविध कल्याण के लिए आर्यसमाज नामक एक सार्वभौम संस्था की स्थापना की है। पुणे तथा सातारा आदि महाराष्ट्र के नगरों में व्याख्यान देकर दयानन्द सरस्वती २८ वर्ष पश्चात् पुनः बड़ौदा आये।

दयानन्द सरस्वती का द्वितीय बार वडोदरा आगमन

नवम्बर अथवा दिसम्बर १८७५ में स्वामी दयानन्द दुबारा वडोदरा आये, तब तक इस राज्य की राजकीय परिस्थिति में बहुत परिवर्तन आ चुका था। उस समय यहाँ के शासक मल्हारराव गायकवाड़ थे जो अपनी स्वतन्त्र प्रकृति के कारण ब्रिटिश सत्ता के साथ तालमेल नहीं बिठा सके। वडोदरा के अंग्रेज रेजिडेण्ट फेयर के साथ उनकी अनबन रही। परिणाम यह निकला कि महाराजा को ब्रिटिश सरकार ने सत्ताच्युत कर दिया। जनता ने गोरी सरकार की इस दमनात्मक कार्रवाई को पसन्द नहीं किया और महाराजा को पुनः सत्ता में लाने के प्रयास किये। इसमें तो कुछ भी सफलता नहीं मिली, किन्तु अंग्रेजा न राजमाता यमुनाबाई को दत्तक पुत्र लेने की स्वीकृति दे दी। फलस्वरूप गायकवाड़ परिवार के एक निकट के रिश्तेदार गोपालराव को पसन्द किया गया जिसने सयाजीराव गायकवाड़ (तृतीय) के नाम से वडोदरा का शासन सूत्र सँभाला। महाराजा सयाजीराव का शासन प्रजाहित के कार्यों के लिए इतिहास में अपना पृथक् स्थान बना चुका है।

इससे पहले जब दिसम्बर १८७४ में स्वामीजी राजकोट गये, तब वहाँ के लोगों के आग्रह को स्वीकार कर उस नगर में आर्यसमाज की स्थापना की गई थी। राजकोट में स्थापित यह आर्यसमाज दीर्घायु प्राप्त नहीं कर सका। तब तक स्वामीजी तो राजकोट छोड़ चुके थे। कुछ समय बाद बम्बई के वल्लभ मतानुयायी शतावधानी पं. गट्टूलाल राजकोट आये। उनकी असाधारण स्मरण-शक्ति का प्रदर्शन करने के लिए उन्हें आर्यसमाज में बुलाया गया। यहाँ उन्होंने स्वरचित कुछ संस्कृत कविताएं सुनाईं। इनमें से एक कविता मल्हारराव की पदच्युति के विषय में थी। इस कविता पाठ का समाचार बम्बई गज़ट तथा टाइम्स ऑफ इण्डिया जैसे अंग्रेजी पत्रों में जब छपा तो शासक वर्ग में हड़कंप मच गया। काठियावाड़ के तत्कालीन पोलिटिकल एजेण्ट मि. जेम्स पील ने आर्यसमाज में सरकार विरोधी कविता पाठ का बुरा माना और इसका नतीज़ा भुगतना पड़ा आर्यसमाज के अधिकारियों को, जो सरकारी सेवा में थे। ये अधिकारी सरकार की नाराज़गी से घबरा गये और उन्होंने आर्यसमाज से अपना सम्बन्ध विच्छेद कर लिया। इस प्रकार नवस्थापित आर्यसमाज राजकोट एक राजनैतिक विवाद में पड़कर अपना अस्तित्व खो बैठा। राजकोट के इस प्रसंग का वडोदरा के शासन तंत्र में आये भूचाल से सम्बन्ध था, इसीलिए इसका उल्लेख किया गया है।

ऋषि दयानन्द के बड़ौदा आने का समाचार वहाँ के प्रधानमंत्री व दीवान सर.टी. माधवराव को प्राप्त हो चुका था। स्वामीजी की

ख्याति देश में सर्वत्र फैल रही थी तथा ब्रिटिश एवं देशी राज्यों में लोग उनके समाज-सुधार और देशोत्थान के कार्यों की प्रशंसा करने लगे थे। जब ऋषि वडोदरा आये तो उनके ठहरने की व्यवस्था रेलवे स्टेशन के समीप की गोविन्दराम रोडिया की धर्मशाला में की गई। यहाँ उनके आतिथ्य का सम्पूर्ण प्रबन्ध राज्य की ओर से किया गया। वहाँ दो सन्तरियों की नियुक्ति की गई जो स्वामीजी के आदेश के पालन के लिए सदा उद्यत रहते। पौष (१९३२ वि.) का महीना था। सर्दी पड़ रही थी। दीवान माधवराव ने गरम बिस्तरों की व्यवस्था की किन्तु महाराज तो द्वन्द्वों को सहन करने का उदाहरण अपने अवधूत काल से ही प्रस्तुत करते रहे थे। इसलिए वे शयन के समय एक साधारण दरी तथा सूती चादर का ही प्रयोग करते। स्वामीजी के आतिथ्य सत्कार का जिम्मा जहाँ दीवान साहब ने लिया, वहाँ राव बहादुर रामचन्द्र गोपाल देशमुख भी इस कर्त्तव्यपालन में सदा लगे रहे। देशमुख यहाँ सिटी जज थे तथा उनके पिता राव बहादुर गोपालराव हरि देशमुख स्वामीजी के विचारों से प्रभावित होकर वैदिक मत को पहले ही स्वीकार कर चुके थे।

स्वामीजी के व्याख्यानों का प्रबंध धर्मशाला के प्रशस्त प्रांगण में किया गया। निवास की समीपता के कारण स्वामीजी को व्याख्यान हेतु दूर जाने का श्रम नहीं करना पड़ता। व्याख्यानों में नगर के जनसामान्य के अतिरिक्त राज कर्मचारी तथा प्रतिष्ठित

लोगों का बड़ा समुदाय भी उपस्थित रहता था। ऐसे महानुभावों में कतिपय ये थे-मणिभाई यशभाई, रायबहादुर गजानन विट्ठल, पुलिस कमिश्नर पेला भाई तथा सिटी जज रामचन्द्र गोपाल देशमुख।

बड़ौदा में स्वामीजी का प्रथम व्याख्यान देशोन्नति पर हुआ। उन्होंने देश की दशा को सुधारने के लिए सभी को सन्नद्ध होने के लिए कहा। दूसरे व्याख्यान का विषय था वेद के पठन-पाठन अधिकार का विवेचन। मनुष्य मात्र के लिए, बिना किसी वर्ण, वर्ग, लिंग के भेदभाव को मान्यता दिये, वेद को पढ़ने-पढ़ाने का अधिकार स्वीकार करना दयानन्द की एक महती देन है। यह स्मरणीय है कि मध्यकालीन धर्माचार्यों ने द्विजों से भिन्न शूद्रों तथा स्त्रियों को वेद का अनधिकारी घोषित किया था। इसके विपरीत स्वामीजी का कहना था कि वेद तो परमात्मा का पवित्र ज्ञान है, विधाता की कल्याणी वाणी है जिसका उपदेश सभी मनुष्यों को दिया जाना चाहिए। इस प्रसंग में जब उन्होंने यजुर्वेद के मंत्र 'यथेमां वाचं कल्याणी' (२६/२) को उद्धृत कर व्याख्यान आरम्भ किया ही था कि वहाँ उपस्थित पौराणिक ब्राह्मण समुदाय कानों में अंगुलियां डालकर कोलाहल करने लगा। वे 'अब्रह्मण्यम्' तथा 'शान्तं पापम्' जैसे वाक्यों का उच्चारण कर स्वामीजी को वेदमंत्रों को सर्व सामान्य के समक्ष बोलने से विरत करने लगे। उनका कहना था कि इस सभा में शूद्र तथा आर्येतर लोग भी बैठे हैं, भला उनकी उपस्थिति में वेदमंत्रों का पाठ कैसे हो सकता है?

विरोधियों का तुमुल कोलाहल जब बढ़ता ही गया और व्याख्यान में बाधा पड़ने लगी तो राव बहादुर गजानन ने पण्डितों को समझाया कि या तो वे शान्तिपूर्वक व्याख्यान सुनें या यहाँ से चले जाएं। थोड़ी देर तक वे लोग चुप रहे, किन्तु स्वल्पकाल बाद उनका व्याख्यान में बाधा देना पुनः आरम्भ हो गया। वे स्वामीजी को शास्त्रार्थ की चुनौती देने लगे। स्वामीजी ने कहा, आप लोग धैर्य रखें। व्याख्यान समाप्त होने दीजिये, फिर शास्त्रार्थ भी हो जाएगा। किन्तु पौराणिक समुदाय तो व्याख्यान में विघ्न डालने के लिए कृतसंकल्प था। उनकी इस मंशा को भांप कर रा.ब. गजानन ने स्वामीजी से व्याख्यान बंद करने की प्रार्थना की और उनके साथ आए पं. कृष्णाराम को कहा कि वे पण्डितों से मिलकर उन विद्वानों की सूची बना लें जो शास्त्रार्थ करना चाहते हैं। स्वामीजी ने भी कहा कि आप लोग यह स्पष्ट करें कि शास्त्रार्थ की अवधि कितनी होगी क्योंकि शास्त्रार्थ तो एक वर्ष तक भी चलाया जा सकता है और दो घण्टे में भी समाप्त हो सकता है। पण्डित लोग भला इसका क्या उत्तर देते? इस समय स्वामीजी ने परस्पर वार्तालाप में हिन्दी का ही प्रयोग किया था। उनके हिन्दी सम्भाषण से पण्डितों को यह भ्रम हो गया कि यह संन्यासी संस्कृत में व्युत्पन्न नहीं हैं, तभी तो हिन्दी में बोल रहे हैं।

पण्डितों की इस कानाफूसी को मणि भाई यश भाई ने सुन लिया और स्वामीजी से कहा कि आप पण्डितों को संस्कृत में शास्त्रार्थ करने के लिए आहूत करें। स्वामीजी ने उत्तर में कहा कि

संस्कृत में शास्त्रार्थ करने में उन्हें तो कोई आपत्ति नहीं है किन्तु यह स्पष्ट हो जाना चाहिए कि यदि इस बीच पण्डित लोग अशुद्ध संस्कृत बोलने लगे तो इसकी जिम्मेदारी किसकी होगी? मणि भाई ने कहा कि ऐसा होगा तो श्रोता समाज को पण्डितों की संस्कृत ज्ञान शून्यता का पता लग जाएगा। अब शास्त्रार्थ आरम्भ हुआ। सर्वप्रथम यज्ञेश्वर शास्त्री से व्याकरण पर चर्चा आरम्भ हुई। स्वामीजी ने प्रारम्भ में ही स्पष्ट कर दिया कि परिभाषेन्दुशेखर तथा मनोरमा आदि संस्कृत के अनार्ष व्याकरण ग्रन्थों में उनकी आस्था नहीं है। वे तो अष्टाध्यामी तथा महाभाष्य को ही प्रामाणिक मानते हैं, अतः इन ग्रन्थों के आधार पर ही चर्चा होगी। 'भू' धातु के लिंग लकारों के प्रयोग के विषय में स्वामीजी ने प्रश्न किया। लगभग आधे घण्टे के पश्चात् यज्ञेश्वर शास्त्री ने मौन धारण कर लिया।

इसके पश्चात् पं. अप्पयशास्त्री से न्याय विषय पर चर्चा आरम्भ हुई। काफी देर तक चर्चा चलती रही अन्ततः शास्त्रीजी भी मौन हो गये। जब यज्ञेश्वर तथा पं. अप्पय शास्त्री जैसे नगर के मूर्धन्य विद्वान् भी स्वामीजी के सम्मुख शास्त्रार्थ समर में नहीं टिक सके तो नगर के पण्डितों को विश्वास हो गया कि इस संन्यासी को शास्त्रार्थ में जीतना सरल नहीं है। वस्तुतः बड़ौदा में पण्डितों द्वारा स्वामीजी से शास्त्रार्थ करने का एक अन्य प्रयोजन भी था जो उनकी आजीविका से जुड़ा था। बड़ौदा राज्य की ओर से सूरत, पूना, नासिक आदि नगरों के संस्कृत पण्डितों को प्रतिवर्ष

वर्षाशन के रूप में कुछ राशि दी जाती थी। इस राजकीय सहायता को दिए जाने के पहले बड़ौदा के पण्डित अन्य प्रदेशों के पण्डितों की परीक्षा लेते थे तथा उनकी संस्तुति पर ही यह वर्षाशन उन्हें मिलता था। जब स्वामीजी बड़ौदा आये तो समीपवर्ती नगरों के पण्डितों को भय हुआ कि यदि दयानन्द बड़ौदा नगर में विद्वता की धाक जमा कर पौराणिक पाखंडों के खण्डन में सफल हो जाते हैं तो राज्याधिकारियों की दृष्टि में उनको पाण्डित्य तथा वैदुष्य से शून्य समझ लिया जायगा। इसका परिणाम यह भी हो सकता है कि राज्य की ओर से उन्हें मिलने वाली आर्थिक सहायता बंद कर दी जाए। ये पण्डित तो देवमंदिरों में पूजा-अर्चना तथा पौरोहित्य वृत्ति से जीविका चलाते थे। उन्हें स्वामीजी के अगाध पाण्डित्य का थोड़ा भी अनुमान नहीं था। इसीलिए वे स्वामी दयानन्द से शास्त्रार्थ करने का आग्रह करते रहे। जब पं. यज्ञेश्वर शास्त्री तथा पं. अप्पय शास्त्री पराजित हो गये तो अवशिष्ट पण्डितों के लिए मौन धारण करना ही शेष रह गया। इनमें यज्ञेश्वर शास्त्री सूरत के रहने वाले थे जिनके व्याकरण ज्ञान की सर्वत्र ख्याति थी और बड़ौदा वास्तव्य अप्पयशास्त्री अपने ज़माने के प्रसिद्ध नैयायिक थे।

बड़ौदा की राजमाता यमुना बाई स्वामीजी के दर्शनों के लिए उत्सुक थीं। उनके निजी सचिव महाराज के पास आये तथा उनसे निवेदन किया कि वे राजमाता को मिलने का अवसर प्रदान करें। स्वामीजी सामान्यतया स्त्रियों से नहीं मिलते थे, इसलिए उन्होंने राजमाता को भेंट की अनुमति नहीं दी। उधर पौराणिक पण्डितों

को भय हुआ कि यदि राजामाता ने स्वामीजी से भेंट की तो वे उनकी विद्वता तथा योग्यता से प्रभावित हुए बिना नही रहेंगी। इसका परिणाम यह भी हो सकता है कि वे स्वामीजी के सुधार कार्य में उनकी सहायता करें। इसलिए इन विघ्नतोषी पण्डितों ने यमुना बाई को स्वामीजी से मिलने के लिए यह कह कर विरत कर दिया कि दयानन्द नास्तिक है, प्रचलित धार्मिक मान्यताओं का विरोधी है अतः उसके दर्शन करने से भी पाप लगता है।

पण्डितों ने तो स्वामीजी के प्रशंसक्र राव बहादुर गजानन को भी उनके विरुद्ध भड़काने में कोई कसर उठा नही रखी, किन्तु वे इन पण्डितों से अधिक बुद्धिमान् एवं विचारशील थे। उन्होंने स्पष्ट कहा कि स्वामी दयानन्द के पाण्डित्य के प्रति पण्डितों के मन में ईर्ष्या का भाव है इसीलिए वे उनकी निंदा करने के लिए ही आये हैं जब कि उनमें से कोई ऐसा नहीं है जो शास्त्रार्थ कर उन पर विजय पा सके। उन्होंने पण्डितों को चेतावनी देते हुए कहा कि वे भविष्य में कभी स्वामीजी के विद्वेषी बन कर उनके सामने न आएं।

स्वामीजी ने राजधर्म विषय पर एक प्रभावशाली व्याख्यान केदारेश्वर महादेव के मंदिर में प्रांगण में दिया। व्याख्यान को सफल बनाने के लिए नगर न्यायाधीश रामचन्द्र गोपाल देशमुख ने रात-दिन एक कर दिया। बड़ौदा के उच्च्व राज्य पदाधिकारी, वकील तथा अन्य प्रतिष्ठित नागरिक इसमें उपस्थित थे। बड़ौदा के दीवान सर टी. माधवराव, जो स्वयं अपने ज़माने के उच्चकोटि

के राजनीतिविद् थे, इस व्याख्यान में आये थे। राजधर्म प्रतिपादक इस प्रवचन में स्वामीजी ने वेद, स्मृति, धर्मशास्त्र आदि प्राचीन ग्रन्थों के भूरिशः प्रमाण उद्धृत किये तथा राजधर्म का इतना सुन्दर विश्लेषण किया, जिसे सुनकर श्रोता विस्मयमुग्ध हो गये। व्याख्यान में उन्होंने राजा (शासक) के कर्त्तव्यों तथा गुणों का विवेचन करते हुए अमात्य एवं अन्यान्य कर्मचारियों की अपेक्षित योग्यता तथा अपेक्षाओं की विस्तृत चर्चा की। उन्होंने यह भी स्पष्ट किया कि सामाजिक दोषों को दूर करने तथा सुधारों को लागू करने का दायित्व शासक का ही होता है। उदाहरण रूप में उन्होंने बताया कि बाल विवाह के उन्मूलन, विधवाओं की दशा को सुधारने, प्रजा को शिक्षित करने तथा नारी उत्थान के कार्यक्रमों को लागू करना राजा का पुनीत कर्त्तव्य है। भाषण का उपसंहार करते हुए स्वामीजी ने देश के संदर्भ में एक महत्त्वपूर्ण बात बताई। उन्होंने कहा कि जिस दिन भारतवासी सामाजिक दृष्टि से सशक्त तथा हानिकारक रूढ़ियों से मुक्त हा जायेंगे, उस दिन उन्हें राजनैतिक स्वतंत्रता प्राप्त कने में देर नहीं लगेगी। देश की पराधीनता से सतत चिन्तित रहने वाले स्वामी दयानन्द की उपर्युक्त मीमांसा सर्वथा सार्थक सिद्ध हुई है। राजनैतिक स्वतंत्रता तभी स्थायी होती है जब देशवासी सामाजिक दृष्टि से शक्तिशाली और सुसंगठित हों तथा समाज को दुर्बल करने वाले रीति रिवाजों तथा अंध धारणाओं से अपने आपको पूर्णतया मुक्त कर लें। आज भारत की राजनैतिक स्वतंत्रता में जो स्थायित्व नहीं आया है, उसका प्रमुख कारण हमारी सामाजिक दुर्बलता, अनेकता तथा रूढ़ियों का गुलाम

बना रहना ही है। निश्चय ही ऋषि दयानन्द की उपर्युक्त धारणा सर्वथा वस्तुनिष्ठ एवं तथ्याश्रित थी क्योंकि परिपूर्ण सामाजिक एक्य के अभाव में कोई भी देश अपनी स्वतंत्रता को बचा कर नहीं रख सकता। राजनय के कुशल व्याख्याता दयानन्द ने मनु, शुक्र, विदुर, कामन्दक तथा विष्णुगुप्त चाणक्य जैसे राजनीति विशारदों के मतों को उद्धृत कर जैसा व्याख्यान दिया उसे सुनकर सर टी. माधवराव की प्रसन्नता का पार नहीं रहा। उन्होंने भक्ति पुरस्सर भाव से स्वामीजी के चरणों में प्रणिपात किया और कहा कि मैं तो आपको एक सर्वसंग-परित्यागी परिव्राजक के रूप में ही जानता था। आपके इस व्याख्यान को सुनने से तो यह सिद्ध हो गया कि आपके तुल्य राजनयविशारद अन्य कोई नहीं है। नृपनीति में तो आप हम पेशेवर राजनीतिज्ञो से कहीं आगे हैं।

स्वामी दयानन्द अपने वाक् कौशल तथा उक्ति चातुरी से प्रतिपक्षी को निरुत्तर कर दिया करते थे। एक दिन स्वामीजी अपने डेरे पर क्षौर करवा रहे थे। इतने में वहाँ एक ब्राह्मण आया और उसने व्यंग्य भाव से कहा, संन्यासियों का धर्म तो त्याग है। आप शरीर संस्कार में क्यों लगे हैं? स्वामीजी ने सहज भाव से उत्तर दिया, यदि बाल बढ़ाना ही त्याग का चिह्न है तब तो रींछ को ही सबसे बड़ा त्यागी मानना होगा। आक्षेपकर्त्ता को तो जवाब मिल गया परन्तु इसके पश्चात् उन्होंने उस ब्राह्मण को समझाते हुए कहा, शरीर का अवमूल्यन करना उचित नहीं है। इससे ही धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष- चारों पुरुषार्थों की प्राप्ति होती है। हमारे

शास्त्रों में शरीर को देवमंदिर कहा गया है। अतः लोकोपकार तथा स्वहित के लिए शरीर की समुचित देखभाल जरूरी है। शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम्-धर्म की साधना शरीर से ही होती है।

इसी प्रकार एक अन्य व्यक्ति ने स्वामीजी के शास्त्रों के प्रकाशन के लिए धन लेने पर आपत्ति करते हुए कहा कि संन्यासियों के लिए तो धन का संग्रह वर्जित बताया गया है। इस पर स्वामीजी ने उसे समझाते हुए कहा कि लोकहित के कार्यों में व्यय करने के लिए जनता से धन लेना अनुचित नहीं है। केवल अपने ही हितों की पूर्ति के लिए धन का संग्रह अनुचित कहा गया है। उन्होंने खुद का उदाहरण प्रस्तुत करते हुए कहा कि जब तक वे देशोद्धार तथा समाज के उत्थान के कार्य में पूर्ण रूप में नहीं लगे थे, तब तक उन्होंने पूर्ण अपरिग्रह का व्रत ले रखा था। वह उनकी अवधूत अवस्था थी और वे सर्वथा निर्लेप, सर्वपदार्थत्यागी होकर गंगा के तटवर्ती प्रदेश में विचरण करते थे तथा धर्म का उपदेश करते थे। उस समय वे धन की बात तो दूर रही, अपने भोजन तक के लिए किसी से याचना नहीं करते थे। अब जब कि उन्होंने संस्कृत विद्या के प्रचार तथा वैदिक धर्म के पुनरुत्थान के लिए वैदिक पाठशालाओं की स्थापना तथा वेदभाष्य लेखन जैसे कार्य आरम्भ किये हैं, तब से धन की आवश्यकता रहती है जो उदार तथा दानशील व्यक्तियों द्वारा पूरी की जाती है। लोकहित के लिए धन लेना अनुचित नहीं है।

इस स्थिति में स्वामीजी लोकोपकार्थ धन लेने को गलत नहीं मानते थे। उनका तर्क था, जैसे कुआँ खोदने के समय जो मिट्टी

निकाली जाती है उसे पुनः कुएँ की दीवारों में ही लगा दिया जाता है। इसी प्रकार हम जो धन जनता से लेते हैं उसे जनहित कार्यों में ही लगा देते हैं। स्वामीजी व्यक्तिगत रूप से किसी से कोई राशि भेंट रूप में स्वीकार नहीं करते थे। इसलिए जब बड़ौदा से प्रस्थान का समय निकट आया तो राज्य के दीवान सर टी. माधवराव ने महाराज को स्वगृह पर आमंत्रित किया और एक थाल में एक सहस्र रुपये भेंट के रूप में अर्पित किये। स्वामीजी ने इसे स्वीकार नहीं किया और कहा कि जिस प्रकार वल्लभ सम्प्रदाय के महाराज कहलाने वाले गुरु अपने शिष्यों के घर जाकर भेंट वसूल करते हैं, हम वैसे नहीं हैं।

स्वामीजी का दीवान माधवराव पर जो प्रभाव था, उसे देखकर एक व्यक्ति ने उनसे निवेदन किया कि यदि वे अपने व्यक्तिगत सम्बन्ध तथा प्रभाव को काम में लाकर अपने एक रिश्तेदार को अपराध मुक्त करा दें तो वह वेद भाष्य निधि में बीस हजार रुपये देने के लिए तैयार है। यह बात भी सम्बन्धित व्यक्ति ने स्वामीजी के निकट रहने वाले पं. कृष्णाराम के माध्यम से उन्हें कहलवाई। स्वामीजी इस सिफारिश से बहुत नाराज हुए और उन्होंने पं. कृष्णाराम को सख्ती के साथ कहा कि धन का प्रलोभन देकर राजकीय व्यवस्था में हस्तक्षेप करने के लिए कहना ही अपराध है। हां, यदि उनके द्वारा की गई निर्दोष सिफारिश से स्वदेश के किसी बंधु का हित हो, तो वे ऐसा कर सकते हैं। परन्तु इसके लिए रुपये लेना तो रिश्वत है। जब उन्हें विश्वास हो

गया कि वास्तव में सम्बन्धित व्यक्ति निरपराध है तो उन्होंने बात ही बात में दीवान साहब से इसकी चर्चा कर दी। परिणामस्वरूप वह व्यक्ति आरोप मुक्त होकर कारागार से छोड़ दिया गया। इस घटना से स्वामीजी की असामान्य निःस्पृहता प्रकट होती है, साथ ही उनकी न्यायप्रियता तथा लोकहितैषी प्रवृत्ति भी उजागर होती है।

स्वामी दयानन्द ने बड़ौदा के राजपुरुषों तथा सामान्य जनता में सुधार तथा देशोद्धार के जिन सूत्रों का बीजारोपण किया, वे आगे चलकर फलीभूत हुए। निकट भविष्य में जब महाराजा सयाजीराव गायकवाड़ ने अपने इस राज्य में सुधार के अनेक कार्यक्रमों का आरम्भ किया तो उनके मूल में दयानन्द की वही दूरदर्शिता तथा भविष्य को देखने की दृष्टि काम कर रही है। अपने बड़ौदा प्रवास के समय स्वामीजी ने बाल विवाह के उन्मूलन, दलित जातियों के उत्थान तथा प्रत्येक बालक-बालिका को अनिवार्य रूप से शिक्षित करने की बात कही थी। बड़ौदा राज्य में शिक्षा प्रचार, दलितोत्थान तथा अन्य समाज सुधार के जो कार्य आगे चलकर क्रियान्वित हुए, उनके पीछे स्वामी दयानन्द के उपदेशों का प्रभाव स्पष्ट दिखाई दे रहा था। लगभग तीन मास इस बड़ौदा नगर में रहकर स्वामी दयानन्द मार्च १८७६ के आरम्भ में बम्बई आ गये।

परिशिष्ट–1

बड़ौदा में आर्यसमाज का कार्य तथा प्रवृत्तियां

ऋषि दयानन्द तो बड़ौदा केवल दो बार ही आये, किन्तु उनके उपदेशों ने इस राज्य के सर्वांगीण उत्थान में जो महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की, उसे हम परवर्ती काल की गतिविधियों को देख कर समझ सकते हैं। स्वामी दयानन्द के दिवंगत होने के पश्चात् स्वामी नित्यानन्द ब्रह्मचारी ने देशी रियासतों में वैदिक धर्म के प्रचार का बीड़ा उठाया और राजस्थान, मध्यप्रदेश, गुजरात तथा महाराष्ट्र तक के राजाओं को धर्मोपदेश दिया। बड़ौदा के प्रजाप्रिय नरेश महाराजा सयाजीराव गायकवाड़ से उनका घनिष्ठ सम्बन्ध रहा। महाराजा से उनका परिचय महामति महादेव गोविन्द रानडे ने कराया था। उनका परिचय-पत्र लेकर स्वामी नित्यानन्द महाराज गायकवाड़ से २७ अक्टूबर १८९५ को मिले। इसके पश्चात् इन दोनों महापुरुषों की मैत्री चिरस्थायी हो गई। बड़ौदा राज्य में जितने सुधार के कार्य महाराजा सयाजीराव के समय में हुए, उनके पीछे स्वामी नित्यानन्द की प्रेरणा काम कर रही थी। स्वामीजी के

लिए बड़ौदा के राजमहल के द्वार सदा खुले रहते थे। वे अन्तःपुर में भी उपदेश हेतु सादर आमंत्रित किये जाते। यदा-कदा वे महाराज के साथ भोजन भी करते।

स्वामीजी की प्रेरणा से महाराज ने आर्य धर्म परिषद् की अध्यक्षता ग्रहण की तथ उसमें वैदिक सिद्धान्तानुकूल भाषण दिया। राज्य में अनिवार्य शिक्षा, दलितोद्धार, पुरातन संस्कृत ग्रन्थों के प्रकाशन, पौराहित्य प्रशिक्षण आदि के जो महत्त्वपूर्ण कार्य हुए उनमें स्वामीजी का प्रमुख हाथ रहा था। महाराजा को जब भी कोई आवश्यक परामर्श करना होता वे तुरन्त उन्हें बुलाते। स्वामी नित्यानन्द ने चारों वेदों की पदानुक्रमणियों को प्रकाशित करने का कार्य अपने हाथ में लिया, तो उसमें बड़ौदा के राजकोष से पन्द्रह हजार की आर्थिक सहायता दी गई।

आर्यसमाज के सिद्धान्तों और कार्यों से महाराजा सयाजीराव अत्यन्त प्रभावित थे। स्वामी दयानन्द की उत्तराधिकारिणी परोपकारिणी सभा ने अपने ४ मार्च १९२३ के अधिवेशन में महाराजा को अपना सदस्य मनोनीत किया। यह स्थान जोधपुर के महाराजा प्रतापसिंह के निधन के कारण खाली हुआ था। यद्यपि वे राज्यकार्यों में व्यस्त रहने के कारण सभा के नियमित अधिवेशनों में भाग नहीं ले सके, किन्तु ऋषि दयानन्द के मिशन को आगे बढ़ाने में उनका सहयोग आर्यसमाज को सदा प्राप्त होता रहा। १९२४ में महाराजा साहब को परोपकारिणी सभा ने अपना सभापति निर्वाचित किया और वे इस पद पर मृत्युपर्यन्त (१९३८ तक) रहे।

स्वामी नित्यानन्द के परामर्श से महाराजा सयाजीराव ने पं. आत्माराम अमृतसरी (१८६७-१६३८) को अपने राज्य में आमंत्रित किया और अछूत मानी जाने वाली जातियों के लिए स्थापित राज्य के विद्यालयों का निरीक्षक नियुक्त किया। मास्टर आत्माराम ने इस कार्य को अत्यन्त मनायोगपूर्वक किया। परिणामस्वरूप बड़ौदा राज्य में अछूतोद्धार का काम द्रुतगति से सम्पन्न हुआ तथा ग्रामीण जनता में शिक्षा का व्यापक प्रचार हुआ। उन्होंने नगर के कारेली बाग इलाके में आर्य कन्या महाविद्यालय की स्थापना की जिससे नारी शिक्षण को बल मिला। गुरुकुल प्रणाली से चलाये जाने वाले इस महाविद्यालय से जो स्नातिकाएं निकलीं उन्होंने देश तथा समाज के लिए महत्त्वपूर्ण योगदान किया है। मास्टर आत्माराम के पुत्रों में पं. आनन्दप्रिय (१८६६-१६६१) सर्वाधिक सक्रिय तथा कर्मठ थे। आर्य कन्या महाविद्यालय को देश की एक महत्त्वपूर्ण शिक्षण संस्था के रूप में विकसित करना उनके जैसे कर्मशील तथा पुरुषार्थी का ही काम था।

आर्यसमाज के प्रसिद्ध विद्वान् पं. वैद्यनाथ शास्त्री भी पर्याप्त समय तक बड़ौदा रहे तथा यहाँ की सामाजिक गतिविधियों में अपना योगदान करते रहे।

सन्दर्भ ग्रन्थ

१. महर्षि दयानन्द सरस्वती का जीवन चरित-देवेन्द्रनाथ मुखोपाध्याय रचित, पं. घासीराम द्वारा सम्पादित।

२. नवजागरण के पुरोधा-दयानन्द सरस्वती, डा. भवानीलाल भारतीय

परिशिष्ट-2

आर्यसमाज बड़ौदा की प्रवृत्तियां

१. साप्ताहिक सत्संग

वारसीया	: प्रत्येक रविवार प्रातः ८.०० से ६.३० यज्ञ, भजन, उपदेश एवं प्रवचन
दत्त अपार्टमेंट, मकरपुरा	: प्रत्येक सोमवार सायं ६.०० से ८.०० यज्ञ, भजन, उपदेश एवं प्रवचन
२. वेद प्रचार	: वैदिक धर्म प्रचार हेतु विशेष कार्यक्रमों का आयोजन एवं साहित्य वितरण
३. वैदिक संस्कार	: वैदिक संस्कार, यज्ञादि कराने के लिए पुरोहित की सेवाएं उपलब्ध
४. यज्ञ सामग्री	: यज्ञ सामग्री की बिक्री
५. साहित्य बिक्री	: हिन्दी, गुजराती, अंग्रेजी में उपलब्ध आर्ष ग्रंथों, साहित्य की बिक्री और वितरण

६. दवाखाना (वारसीया)	:	निःशुल्क आयुर्वेदिक दवाखाना चलाना
७. महिला सत्संग (मासिक)	:	महिलाओं के पारिवारिक (अलग-अलग परिवारों में) सत्संग का आयोजन किया जाता है
८. बालक-बालिकाओं को प्रोत्साहन	:	प्रतियोगिता एवं शैक्षणिक तेजस्विता के आधार पर पारितोषिक वितरण करना

प्रकाशक :

आर्य परिवार, 'आर्य नीडम्'

वडोदरा - 390 015
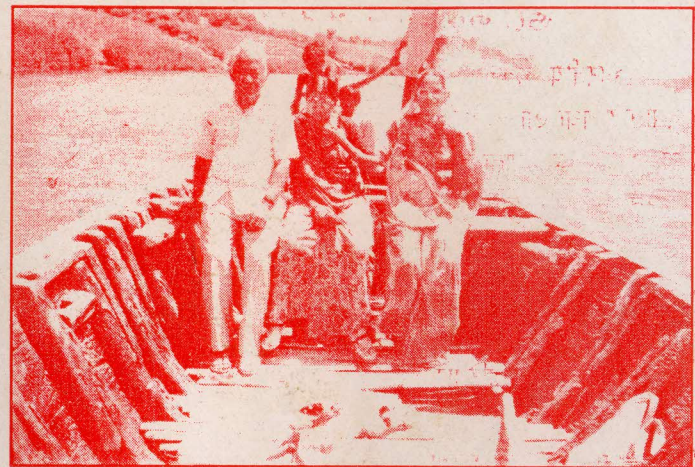
चांणोद तथा करनाली के निकट नर्मदा
नौका में डॉ. भवानीलाल भारतीय व श्रीमती रतनसी भाई बेलाणी
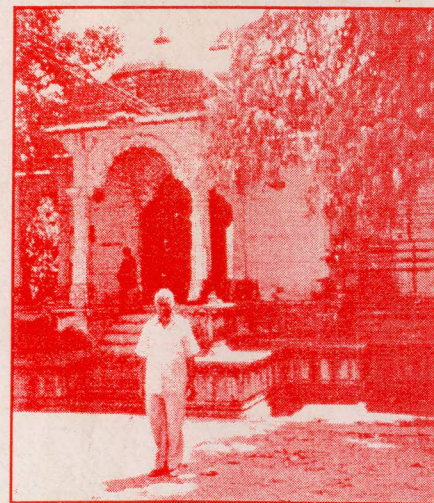
केदारेश्वर मन्दिर, वडोदरा
जहाँ पर स्वामीजी का प्रवचन हुआ था

डॉ. भवानीलाल भारतीय

भारतीय नवजागरण में ऋषि दयानन्द तथा आर्यसमाज की भूमिका के अधिकृत व्याख्याता डॉ. भवानीलाल भारतीय अपने विषय के तलस्पर्शी एवं प्रामाणिक विद्वान् माने जाते हैं। १९२८ ई. में इनका जन्म राजस्थान के नागौर जनपद के गांव परबतसर में एक मध्यवित्त परिवार में हुआ। इनकी उच्च शिक्षा जोधपुर में हुई। हिन्दी तथा संस्कृत साहित्य में एम.ए. करने के पश्चात् इन्होंने 'संस्कृत भाषा और साहित्य को आर्यसमाज की देन' विषय लेकर १९६८ में राजस्थान विश्वविद्यालय से 'डॉक्टर ऑफ फिलासफी' की उपाधि प्राप्त की।

आप अपने युवाकाल से ही आर्यसमाज की साहित्यिक और लेखन सम्बन्धी प्रवृत्तियों से जुड़े रहे। आपका लेखन काल पांच दशकों की सुदीर्घ अवधि तक विस्तृत है और इस बीच इनके लगभग ७० ग्रन्थ प्रकाशित हुए हैं। इन्होंने आर्यसमाज के ऐतिहासिक और वैचारिक पक्ष को उभारने का सतर्क प्रयास किया है, साथ ही ऋषि दयानन्द के जीवनचरित एवं व्यक्तित्व-विश्लेषणपरक इनके शोधपूर्ण ग्रन्थों की सुधी समाज में सर्वत्र सराहना हुई है। आर्यसमाज विषयक पुरातात्त्विक सामग्री का इन्होंने न केवल गम्भीर अध्ययन ही किया है, अपितु अपने लेखन में इसका उपयोग भी किया है। यही कारण है कि सभी स्वदेशी एवं अन्य देशस्थ विद्वान् शोधकार्यों में उनसे सहायता एवं परामर्श लेते हैं।

मुद्रक : जांगिड़ कम्प्युटर्स, जोधपुर ☎ 440581